115 साम्यवाद की सफलता के रहस्य

बंगाल और केरल के चुनाओं में शानदार सफलता पाकर साम्यवद ने भारत के अनेक राजनैतिक समीक्षकों को चिन्ता में डाल दिया है। बंगाल में लगातार तीन दशक की राजनैतिक पारी खेलना और केरल में भी काग्रेस को मजबूत टक्कर देना कोई मामूली बात नहीं कही जा सकती। विचारधारा के रूप में साम्यवाद की सम्पूर्ण विश्व से लगभग समाप्ति हो रही है। इतने वर्षों तक पूँजीवादी देशों के विरोध का नेतृत्व करने वाले साम्यवाद को अब इस्लाम की आड़ में खड़े होना पड़ रहा है। ऐसे विपरित वातावरण में भी भारत में साम्यवाद के बंगाली झंडे को न कांग्रेस हिला सकी न संघ परिवार यह शोध का विषय तो है ही। संघ परिवार की अनेक राज्य इकाईयां दबे छुपे साम्यवाद के बंगाल संस्करण से कुछ सीखने तक क इच्छा करने लगी हैं।

साम्यवाद तानाशाही और लोकतंत्र के बीच की सत्ता प्रणाली जिसमें व्यक्ति की तानाशाही न होकर समुह की तानाशाही होती है। साम्यवाद में सुरक्षा भी मिलती है और न्याय भी। दुनिया के किसी भी लोकतांत्रिक देश की आंतरिक सुरक्षा और न्याय व्यवस्था साम्यवादी व्यवस्था से निश्चत रूप से खराब ही होती है। किन्तु साम्यवाद में स्वंत्रता का जिस तरह सदा–सदा के लिए गला घोट दिया जाता है वह किसी भी लोकतांत्रिक व्यवस्था में जीने वाले व्यक्ति के मन में भय पैदा कर देती हैं। इतना भय कि उस भय के समक्ष न्याय और सुरक्षा की गारंटी को भी वह तुच्छ समझने लगता है। यही कारण है कि साम्यवाद का अन्तर्राष्ट्रोय किला देखते ही ध्वस्त हो गया।

सम्पूर्ण विश्व में साम्यवाद ध्वस्त हो गया किन्तु भारत में वह आज भी फलफूल रहा है यह विचार का विषय है। भारत में तीन प्रदेश ''बंगाल, केरल, और त्रिपुरा'' में साम्यवाद था और आज कुछ न कुछ अच्छी ही स्थिति में है। अटल जी के शासन काल से आज की तुलना करें तो साम्यवादी शेष भारत में भी कुछ अधिक ही चर्चा में हैं। साम्यवाद के विस्तार पर चर्चा करते समय हमें कुछ स्पष्ट अंतर दिखलाई पड़ता हैः–

(1) साम्यवाद का वैचारिक टरकराव सीधा–सीधा लोकतंत्र से रहा है। लोक स्वराज्य और लोकतंत्र में बुनियादी फर्क रहा है। लोकतंत्र के अंदर लोक नियुक्ति तंत्र का भावार्थ छिपा है और लोक स्वराज्य के अन्तर्गत लोक नियंत्रित तंत्र का। अब तक सम्पूर्ण विश्व में कहीं भी लोक स्वराज्य पणाली लागू नहीं हो पाई है किन्तु पश्चिम के लोकतांत्रिक देशों में लोकतंत्र लोक स्वराज्य की ओर झुका हुआ होने से उसे आदर्श लोकतंत्र माना गया। विकृत लोकतंत्र में अव्यवस्था ही होती है, व्यवस्था हो ही नहीं सकती क्योंकि विकृत लोकतंत्र में वोट के लिए आम नागरिकों के मन मे असंभव इच्छाएँ पैदा की जाती हैं जो कभी पूरी हो ही नहीं सकतीं। परिणाम स्वरूप व्यवस्था छिन्न भिन्न हो जाती है तथा ऐसी असंभव इच्छाओं की पूर्ति के प्रयत्नों में न्याय और सुरक्षा पिछड़ जाया करती है। सम्पूर्ण विश्व में तो साम्यवाद का मुकाबला आदर्श लोकतंत्र से हुआ और साम्यवाद आदर्श लोकतंत्र के समक्ष पराजित हुआ किन्तु भारत का लोकतंत्र विकृत होने से वैचारिक संघर्ष का स्वरूप ग्रहण नहीं कर सका। इसलिए भारत का साम्यवाद निरंतर फलता फूलता रहा।

(3) साम्यवादियों ने किसी भी अन्य राजनैतिक दल के कार्यकर्ताओं की अपेक्षा चरित्र बल बहुत उँचा है। चरित्र बल के मामले में विख्यात संघ परिवार समार्थित भाजपयी भी साम्यावादियों की तुलना में कुछ भी नहीं हैं। भ्रष्टाचार के चाहे जो भी प्रकरण उजागर हुए हों, साम्यवादियों की संख्या बहुत ही कम है। साम्यवादी बंगाल में बिहार के समान चुनाव जीतते हैं इस आरोप की भी इस चुनाव में पोल खोल गई। इतने स्टिंग आपरेशन हुए निर्मे पैसा से साम्यवादी दलों का कोई नेता इसमें नहीं फंसा जबकि भाजपा इसमें बुरी तरह फंसी।

चरित्र की इस असमाता पर मैने बहुत विचार किया तो पाया कि चरित्र के मामले में संघ परिवार के लोगों के सामने साम्यवादी कहीं नहीं ठहरते। चरित्र के इतने उँचे आचरण के बाद भी समाज में साम्यवादियों के समक्ष संघ परिवार की छवि के न टिक पाने का कारण दोनो की कार्यप्रणाली का फर्क हैं। साम्यवादी कार्य प्रणाली में पद संगठन का होता है व्यक्ति या पविार का नहीं। पद पर बैठकर प्राप्त लाभ हानि प्रतिष्ठा अप्रतिष्ठा से पद पर बैठे व्यक्ति का कोई संबंध नहीं होता। वह चाहे मुख्यमंत्री हो या प्रधानमंत्री, वह सिर्फ साम्यवादी दलों का वेतनभोगी ही है। संघ परिवार जब तक सत्ता से दूर रहा तब तक तो उसने इस प्रणाली पर काम करने का प्रयास किया किन्तु सत्ता की जल्दी में उसने कमान ढीली कर दी जिसके परिणाम स्वरूप सत्ता के पद पर व्यक्ति का अधिकार होने लगा, दल का नहीं। साम्यवादियों के अतिरिक्त शेष किसी भी दल में यह गुण नहीं किन्तु अन्य दलों की बदनामी इसलिए नहीं होती क्योंकि वे चरित्र को कसौटी बनाते ही नहीं। संघ परिवार चरित्र को कसौटी घोषित तो करता है किन्तु सत्ता के पदों पर संगठन का स्वामित्व न होने से उनका चरित्र का बड़बोलापन उन्हें नुकसान पहुँचाता है। साम्यवादी इस मामले में सबसे ठीक हैं कि डींग कम हांकते हैं और सभी सत्ता के पदों का स्वामित्व संगठन को समर्पित रखते हैं। यही कारण है कि संघ परिवार सत्ता के अवसर मिलते ही उसके लिये किसी भी प्रकार के समझौते करने के लिये व्यक्तियों के दबाव में आ जाता है और साम्यवादी ऐसा दबाव है महसूस नहीं करते क्योंकि पद उनका व्यक्तिगत है ही नहीं। ज्योति बसु ने जिस तरह न चाहते हुए भी प्रधानमंत्री पद छोड़ा उसके समक्ष भारत के किसी अन्य दल के पभाव की तुलना ही व्यर्थ है।

सत्ता के पद व्यक्तिगत होने के कारण ही उसके लिये आपस में उठा पटक चलती रहती है। यदि वह पद ही साम्यवादियों की तरह दल का हो जावे तो आपस उठा पटक भी दल में ऐसी व्यवस्था आज तक बनी नहीं जिसका परिणाम है कि सभी दलो का आधे से अधिक समय आपसी झगड़े निपटाने में ही चला जाता है। अभी भी जिस प्रकार साम्यवादी एकजुट होकर मनमोहन सिंह जी को परेशान करने में सफल हो रहे हैं वह उनको कार्य पद्धति का ही चमत्कार मानना चाहिये।

साम्यवाद पूरे विश्व की राजनैतिक व्यवस्था के लिये सर्वाधिक गंभीर हैं। इस्लाम से भी अधिक। क्योंकि इस्लामिक आतंकवाद तो प्रत्यक्ष दिखाई देता है किन्तु साम्यवाद इतना अप्रत्यक्ष होता है कि वह मानवता की मीठी चाशनी में लिपटा रहता है। सम्पूर्ण विश्व में तो लोकतंत्र ने साम्यवाद के विरूद्ध निर्णायक बढ़त ले ली है किन्तु भारत में अभी लुकाछिपी का खल जारी ह। लोकतंत्र का भारतीय माडल तो लोकतंत्र बनाम साम्यवाद के संघर्ष में जीत नहीं सकता क्याकि (1) भारत का आम नागरिक अव्यवस्था के स्थान पर तानाशाही हो अच्छा मानता है जिसमें अव्यवस्था से तो मुक्ति मिलेगी।

(2) मनमोहन सिंह का पश्चिमी माडल भारत को भष्टाचार से राहत दिला सकता है, आर्थिक सम्पन्नता में आगे बढ़ा सकता है, राष्ट्र और समाज को समृद्ध भी बना सकता है किन्तु न आर्थिक असमानता कम कर सकता है न श्रम शोषण रोक सकता है। मनमोहन सिंह विरोधी गुट तो जरूर पड़ने पर लोकतंत्र के विरूद्ध साम्यवाद के साथ गठजोड़ तक करने की ताक में लगा है। संघ परिवार में संघर्ष का मुद्दा ही नहीं है। क्योंकि वे न योजना बनाना जानते हैं न ही योजना को योजनानुसार कार्यान्वित ही कर सकते हैं। सारी स्थिति को देखते हुए तो लोकतंत्र बनाम साम्यवाद के संघर्ष में लोकतंत्र के समक्ष एक धप्प अंधेरा ही अंधेरा नजर आता है जिसके एक ओर खड़ी है अव्यवस्था और दूसरो ओर नक्सलवाद। भारत आम नागरिक अव्यवस्था की जगह धीरे–धीरे नक्सलवाद की ओर आंख बंद करके बिना विचारे बढ़ रहा है।

फिर भी निराश का यह प्रथम चरण है अंतिम नहीं। अभी आशा की भी अनेक किरणें दिखाई दे रही हैं। पंचायत मंत्री मणिशंकर जी का ग्राम पंचायतों को समक्ष बनाने का बयान लोक स्वराज्य की दिशा में एक मजबूत कदम है। संघ परिवर में भी साम्यवादी खतरे के प्रति बढ़ती चिन्ता के परिणाम स्वरूप कांग्रेस के प्रति सोच में कुछ बदलाव आया है। बुद्धदेव भट्टाचार्य के नेतृत्व में साम्यवाद का बंगाल संस्करण भी इसमें बहुत प्रभाव डाला है, और भी अनेक विचार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष इस दिशा में समाधान की चिन्ता कर रहे हैं। अभी लाकतंत्र के बचने की संभावनाएँ हैं।

इसके लिये कुछ कठोर कदम उठाने आवश्यक हैंः

(1) भारत को लोकतंत्र के पश्चिम माडल की दिशा में पश्चिम से भी अधिक तीव्र गति से लोक स्वराज्य की दिशा में बढ़ना होगा।

(2) मनमोहन सिंह जी को पश्चिम की अर्थनीति पर चलकर समृद्ध देश के बदले एक वर्ष तक सुखी समाज की भारतीय अर्थनीति की शुरूआत करनी होगी जो आर्थिक असमानताए और श्रमशोषण से कुछ राहत दिला सके। इसके लिये बुद्धि से काम लेना होगा अर्थात् डीजल, पेट्रोल बिजली केरोसिन आदि की मूल्य वृद्धि का कोई भी धन सरकारी खजाने में न ले जाकर भारत के प्रत्येक व्यक्ति को समान रूप से बांट देना होगा। मूल्य वृद्धि और वितरण की घोषणा एक साथ करनी होगी।

(3) संघ परिवार को अपनी हार स्वीकार करके अपनी अब तक की नीतियों की समीक्षा करनो होगी तथा नयी नीतियों पर काम करना होगा।

(4) भारत के प्रत्येक नागरिक को अव्यवस्था और नक्सलवाद के बीच में लोक स्वराज्य रूपी एक तीसरे विकल्प पर विचार करना होगा।

मुझे उम्मीद है कि हम जिस तरह अब तक संकटों से बचते रहे हैं उसी भविष्य में भी बच सकेंगे।

(1) श्री उमाशंकर यादव, बोदरवार, कुशीनगर, यू.पी.

(1) सूचना के अधिकार का कानून पास हुआ। इस कानून का महत्व कितना है ?

(2) रोजगार गारंटी योजना की विस्तृत जानकारी।

उत्तरः—भारत के प्रत्येक नागरिक का विभगीय रिकार्ड देखने, पढ़ने छायाप्रति लेने के कानूनी अधिकार को सूचना का अधिकार विधेयक कहा जाता है। देश की ग्यारह समस्याओं में से एक है भ्रष्टाचार। भ्रष्टाचार एक गंभीर और बहुत बड़ी समस्या है। यह बिल भ्रष्टाचार रोकने में एक हथियार का काम करेगा। पहले जिस प्रकार अफिस वाले निडर होकर काम करते थे उसमें अब कुछ कमी अवश्य आयेगी। किन्तु इस बिल का कुल मिलाकर उतना प्रभाव नहीं होगा जितना प्रचारित किया जा रहा है। क्योंकि ग्यारह समस्याओं में से भ्रष्टाचार को छोड़कर किसी अन्य पर इस बिल का कोई खास प्रभाव नहीं होगा। भ्रष्टाचार के मामले में भी अब रिकार्ड सम्हालकर और बच कर बनाये जायेंगे। इसलिए काई क्रान्तिकारी परिणाम न तो अब तक दिखा है न उम्मीद है। फिर भी यह एक अच्छा कदम है यह माना जाना चाहिए।

रोजगार गारंटो योजना पर मैंने अंक एक सौ दो में पूरा लिखा है। समाज में दो प्रकार के लोग हैं (1) जो श्रम बेचते हैं, (2) जो श्रम खरीदते हैं। श्रम बेचने वाले श्रम के बदले म जीवन रक्षक वस्तुएँ खरीदते हैं और श्रम खरीदने वाले श्रम के बदले जीवन रक्षक वस्तुएँ उपलब्ध कराते हैं। भारत की सम्पूर्ण राजनैतिक सामाजिक व्यवयस्था पर हम खरीदने वालों का वर्चस्व है, बेचने विकल्प क रूप में कृत्रिम उर्जा का उपयोग शुरू किया। कृत्रिम उर्जा की मूल्य वृद्धि होती है तो श्रम खरीदने वाले सब लोंगों को भारी कठिनाई होती है। ये लोग चिल्लाते है और सत्ता से जुड़े लोग भी इसलिये सहमत होते हैं कि वे भी श्रम खरीदने वाले ही तो हैं।

रोजगर गारंटी श्रम जीवियों, किसानों, गरीबों को ध्यान में रखकर बनाई गई है। यह योजना तो इन सबकी ओर ध्यान देने का प्रथम चरण है। जब तक प्रत्येक श्रम जीवी को वर्ष भर एक सौ रूपया दैनिक के समतुल्य नहीं मिलता तब तक प्रयत्न जारी रहने चाहियें और इतना करने के लिये दो चार रूपये की मूल्य वृद्धि करनी आवश्यक हैं फिर भी प्रारंभ अच्छा है।

(2) श्री मदनमोहन व्यास, रतलाम, मध्यप्रदेश

ज्ञान तत्व क्र. 108 (1–15) मार्च में आपने सर्वोदय के बारे में जो लिखा वह हकीकत, सटीक व निष्पक्ष है, साधुवाद।

आपके कथन को संक्षेप में सीधे कहा जाय तो ''सर्वोदयी गांधी के हत्यारे हैं क्योंकि उन्होंने गांधी जी द्वारा दिये गये स्वराज्य के प्रारूप 'भारत प्रखंड नगर (गांव) गणराज्यों का संघ हो' को पूरी तरह नकार दिया है। ''

गणराज्य की अपनी विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका होती हैं उसके क्षेत्र क जल, जंगल, जमीन उसकी मालिकी कार्य के होते हैं। संघ का कार्य गणराज्यों में समन्वय व संतुलन करना होता है उन पर शासन करना नहीं। सर्वोदयी मित्रों ने इस गणराज्य व्यवस्था की कभी बात नही की इसलिए वे गांधी के हत्यारे है। स्वराज्य के उक्त प्रारूप के बिना गांधी जी एक सामान्य व्यक्ति हैं, महात्मा या स्वतंत्रता आंदोलन के नेता नहीं। स्वराज्य के इसी रूप के लिए उन्होंने बैरिस्टरी छोड़ी, लंगोटी लगाई, कुटिया में रहे, दर–दर भटके। स्वराज्य के इसी रूप के लिए उन्होंने भारत को आजाद कराया। विश्व में केवल भारत में ही ऐसी व्यवस्था हो सकती है, अन्यत्र नहीं । क्योकि प्राचीन भारत में यह वैदिक व्यवस्था थी और आज भी 'रामराज्य' के रूप में लोक मानस में बसी हुई है।

कृपया इसे ऐसा ही छापें। मेरी भाषा शैली इतनी खराब नहीं है कि उसे बदला जाय। साथ ही मैं व्यर्थ विस्तार भी नहीं करता। ऐसे में मेरे आलेख को बदलने में क्या तुक है। पत्रिका का पृष्ठ भेज रहा ह। उसमें से सुख–शांति सूत्र 'ज्ञान तत्व' में छापें।

उत्तरः—प्रत्येक व्यक्ति में यह दुर्गुण होता है कि वह स्वयं ऊपर वालों से स्वतंत्रता के प्रयत्न करता है किन्तु अपने से छोटे लोगों पर अपने विचार थोपता रहता है। अर्थात् न उसने स्वराज्य को कभी ठीक से समझा न ही उस पर कभी आचरण किया। सर्वोदय से जुड़े लोगों में यह बीमारी विशेष कर पाई जाती है। उनके त्याग और तपस के गुणों में यह दुगुर्ण नुकसान कारक हो जाता है। आप में एक विशेषता यह है कि आप स्वराज्य को समझते तो अच्छी तरह हैं किन्तु पुराने सर्वोदयी होने से आचरण में स्वराज्य दिखता बिल्कुल नहीं है। वैचारिक आधार पर एकला वैचारिक मजबूती का प्रतिक है किन्तु क्रिया के आधार पर एकला चलो में तानाशाही की गंध आती है।

मैंने सदा ही आपके अमृत रूपी विचारों में से दश भक्ति रूपी मक्खी को निकालने का प्रयास किया जिसका बुरा मानना अपका स्वभाव रहा और आपकी नाराजगी झेलना मेरा स्वभाव रहा। किन्तु इस बार मैं हार गया आर आप जीत गये अर्थात् मैंन आपका पत्र ज्या का त्यों दाब दिया। आपने पूरे पत्र में जो कुछ लिखा वह अत्यन्त गंभीर वैचारिक विषय है। आप पूरी तरह ठीक लिख रहें हैं किन्तु यदि आप ''सर्वोदयी गांधी के हत्यारे है'' शब्द नहीं लिखते तो अधिक अच्छा होता क्योंकि यह वाक्य संदर्भहीन है।

सामान्यतया किसी को जब दूसरों को गाली देने में मजा आने लगता है तो गालियाँ देना उसका स्वभाव बन जाता है जिसके बिना उसे वाक्य ही अधुरा लगने लगता है। अब इस विद्वत्ता के शिखर पर पहुँचे हुए आप यदि इस आदत को छोड़ दें तो समाज का बहुत भला होगा। गल्तियों के लिए अपनों को कटु शब्दों में डाटना और गल्तियाँ खोज खोजकर दूसरों को कटु शब्दालोचना से अपने मन की भडांस निकालने के बीच का अंतर समझने की आवश्यकता है। सर्वोदयी गांधी के हत्यारे हैं यह वाक्य आपके चिन्तन के धरातल के उपयुक्त नहीं यह आप भी समझते हैं किन्तु आदत से मजबूर हैं। आपकी पत्रिका अहिंसक समाज रचना में मेरे लिये कितनी पुष्प वर्षा होगी उसके लिये मैं बिल्कुल बरा नहीं मानूँगा क्योंकि मैंने आपके पत्र को ज्यों का त्यों छापने की जो भूल की है उसका प्रायःश्चित तो होना ही है।

आपने सुख शांति सूत्र ज्ञान तत्व म छापने हेतु भेजा है। मैं इसे ज्ञानतत्व के सभी अंको में छापने हेतु सहमत भी रहा। ये सूत्र उपयोगी भी हैं किन्तु ज्ञान तत्व के प्रत्येक अंक में अब तक जो चार लाइन के सूत्र छप रहे हैं वे सुख शांति सूत्रों की अपेक्षा अधिक क्रांतिकारी महसूस किये गये। कई बार हमारी टीम ने विचार किया और तब तय हुआ कि सूत्र बदलना ठीक नहीं। बीच में दो तीन बार व्यवस्था, अव्यवस्था, सुव्यवस्था, कुव्यवस्था, के अंतर को सूत्र के रूप में रखना शुरू किया गया किन्तु फिर बदल कर हमें उन्हीं पुराने सूत्रों '' वर्तमान व्यवस्था.....षड़यंत्र है।'' पर आना ठीक महसूस हुआ । मैंने आपको वचन दिया था फिर भी हमारी टीम के निष्कर्षों को स्वीकार करना हमारी मजबूरी थी। आप तो ब्रह्मर्षि है। आपके मन से तो अब क्रांति की अपेक्षा सुख शांति का प्रचार स्वभाविक प्रक्रिया है किन्तु मैं और मेरे साथी अभी ऐसे उच्च स्तर तक नहीं पहुँच पाये हमारे मन में तो क्रांति की ज्वाला जल रही है जो वर्तमान व्यवस्था को अल्प समय में ही बदल देने का मार्ग प्रशस्त करे। इस आग में आप सुख शांति का पानी दल ने की अपेक्षा क्रांति सूत्र का घी डाल सक तो अधिक समयानुकूल होगा। जब राजनैतिक संवैधानिक गुलामी से मुक्ति मिल जायेगी तब आदर्श सामाजिक व्यवस्था बनाने में आपके सुख शांति सूत्रों का भरपूर उपयोग होगा।

मेरा आपसे निवेदन है कि आप अब अपने इस अनावश्यक निंदा रस से मुक्त हो तो मुझे बहुत सुख शांति का अनुभव होगा।

(3) श्री शिवशंकर जी पेण्टे, सेवाग्राम आश्रम, वर्धा, महाराष्ट्र

मैंने कई बार आपको सुझाव दिया कि गरीबी रेखा के समान ही एक अमीरी रेखा भी बननी चाहिये जिसके उपर रहने वाले व्यक्ति को चिन्हित किया जा सकें वह रेखा चाहे करोड़ की हो या अरब की यह बाद का विषय हैं। पहले यह तो तय करें ऐसी रेखा होनी चाहिये या नहीं। मेरे विचार में तो अवश्य होनी चाहिये। आपकी क्या राय है ?

उत्तरः—आपने पंद्रह वर्ष पूर्व भी यह सुझाव दिया था जो मुझे नहीं जचा किन्तु मैं उस समय जानकारी के अभाव में आपको संतुष्ट नहीं कर सका था। आपने फिर वह सुझाव दुहराया हैं। चूँकि आप हमारी विचार मंथन योजना में पंद्रह बीस वर्षों के भागी दार हैं तथा सर्व सेवा संघ के राष्ट्रीय महासचिव का लम्बे समय तक का आपका अनुभव है इसलिए मैंने आपके सुझाव पर गंभीर विचार मंथन किया। स्वामी मुक्तानन्द जी भी यह सुझाव लम्बे समय से देते रहे हैं। अन्य कई साथी भी इस सुझाव के प्रति गंभीर हैं। अतः विचार करना आवश्यक प्रतीत हुआ।

किसी भी योजना के अच्छे परिणाम तभी प्राप्त होते हैं जब योजना सैद्धांतिक रूप से भी ठीक हो और व्यवहारिक रूप से भी। सैद्धांतिक पक्ष पर विचार करें तो भारत के सौ करोड़ की आबादी में आधे लोग एक काल्पनिक आर्थिक रेखा के नीचे हैं और आधे उस रेखा के उपर। वर्तमान समय में भारत में इस रेखा के नीचे वालों की वार्षिक आय दस हजार रूपया प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति से कम और उपर वालों की अधिक होगी। ये आंकड़े बिल्कुल अनुमानित कल्पना के हैं वास्तविक नही। मैं आर्थिक असमानता कम करने का वैसा अर्थ नहीं समझता जैसा आप समझ रहे हैं। आप समझ रहे हैं कि तीन श्रेणियाँ बनाकर सर्वोच्च सम्पन्न अथात् अमीरी रेखा से उपर, निम्नतम कमजोर अर्थात् गरीबी रेखा से नीचे और मध्यम अर्थात् गरीबी और अमीरी रेखा के बीच वालों को बनाकर सर्वोच्च सम्पन्नों और निम्नत गरीबों के बीच के अंतर को कम करना आर्थिक समानता है। मैं ऐसा नहीं समझता। मेरे विचार में सम्पूर्ण समाज में प्रत्येक परिवार के उपर वालों की आर्थिक स्थिति और उससे नीचे वालों की आर्थिक स्थिति में अंतर घटना चाहिये। मेरे विचार में ऐसे व्यक्तियो को संख्या महत्वपूर्ण नहीं है। प्रभाव महत्वपूर्ण हैं। यदि आपके अनुसार रेखा बनी तो उसकी सीमा अनुसार मान लें कि हमारी योजना का प्रभाव सम्पूर्ण आबादी पर पड़ना चाहिये। यदि किसी गांव में एक हजार की आबादी में सब के सब बीच की रेखा वाल हैं तब भी उनकी असमानता में अंतर दिखना आवश्यक है।

अर्थात् यदि एक व्यक्ति की वार्षिक आय एक हजार, दूसरे की दो हजार तीसरे की एक करोड़ चौथे की एक सौ करोड़ है और आपकी योजनानुसार एक हजार वार्षिक वाले की आय बढ़कर तीन हजार तथा सौ करोड़ वाल की नव्वे करोड़ हो जावे तो मैं इसे पर्याप्त नहीं मानता। आर्थिक असमानता कम होने की मेरी परिभाषा यह है कि एक हजार वाले और दो हजार वाले की दूरी भी कम हो भले ही दोनों ही गरीबी रेखा के नीचे क्यों न हों। आर्थिक असमानता कम करने के प्रयत्नों का प्रभाव प्रत्येक परिवार पर दिखना आवश्यक है।

दूसरा खतरा इस रेखा के बनने का यह भी है कि समाज में शोषक और शोषित की भावना पैदा होकर वर्ग विद्वेष बढ़ेगा। हमारी योजना ऐसी होनी चाहिये जो वर्ग विद्वेष दूर करे बढ़ाये नहीं।

तीसरा बात यह होगी कि अमीरी रेखा से उपर वालों में धन कमाने की प्रतिस्पर्धा कम या खत्म हो सकती है क्योंकि रेखा के उपर होना उनके संकट का कारण हो सकती है। इस उदासीनता से गरीब वर्ग का आत्मतुष्टि तो होगी किन्तु लाभ नहीं होगा क्योकि उसका विकास दर पर गंभीर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। हमें यह नहीं भूलना चाहियें कि हमें विश्व अर्थव्यवस्था में भी अपनी मजबूत स्थिति दर्ज करानी है। आर्थिक असमानता कम करने का दुष्प्रभाव विश्व व्यापार में कमजोरी का कारण न बने यह सतर्कता भी आवश्यक है।

जब हम आपके सुझाव के व्यावहारिक पक्ष का आकलन करते है। तो वह ओर भी कमजोर पातें है। जब तक भ्रष्टाचार पर अंकुश नहीं लगता तब तक प्रशासनिक तरीके से आर्थिक विषमता कम हो ही नहीं सकती। एक मजदूर की मजदूरी घोषित है बहतर और मिलता हैं चालीस। एक कलर्क की घोषित दो सौ और मिलता है पांच सौ। यदि आपने इस अन्तर को कम करके मजदूर की घोषित एक सौ और कलर्क की डेढ़ सौ कर दी तो मजदूर की मजदूरी चालीस रूपये से घटकर पैंतीस हो सकती है और कलर्क की पांच सौ से बढ़कर छः सौ। यह बात अस्वाभाविक दिखती भले ही हो किन्तु है बिल्कुल स्वाभाविक। स्वतंत्रता के बाद भारत की कुल विकास दर चार से आठ प्रतिशत है। पचास साठ वर्षों में गरीबी रेखा के नीचे कोई नही होना था। सच्चाई यह है कि भारत का सारा आर्थिक ढांचा इस प्रकार चालाकी और भ्रष्टाचार की चपेट में है कि गरीबी रखा के नीचे जीवन जीने वाले कुल मिलाकर जितना टैक्स देते हैं उससे भी बहुत कम मात्रा में उन तक सुविधाएँ पहुँच पाती है। मैंने कुछ दिन पूर्व राहुल बजाज जी का साक्षात्कार सुना जिसमें उन्होने बताया कि अधिकांश टैक्स बड़े लोग देते हैं। मैं उनके कथन को चुनौति देता हूँ। मेरे विचार में बड़े लोग बहुत कम कर देते हैं। इन्कमटैक्स और वल्थ टैक्स को छोड़कर बिक्रो कर, उत्पादन कर, मंडी टैक्स, एक्साइज, आदि सभी टैक्स तो उपभोक्ता चुकाता है। व्यापारियों की भूमिका तो एकत्रितकर्ता तक की ही है। उसमें से भी आधा इकट्ठा करते समय भ्रष्टाचार की भेट चढ़ जाता है और आधा सुविधाएँ देते समय। गंभीरता पूर्वक विचारिये कि आर्थिक समस्याओं के प्रशासनिक समाधानों से कितनी तो आर्थिक असमानता घटी और कितनी भ्रष्टाचार बढ़ा। आप भी कहते रहे हैं कि भारत में साठ प्रतिशत लोग किसान हैं जिनका अधिकांश गरीबी रेखा के नीचे है। आप गरीब को सस्ता राशन देकर उन गरीब किसानों को क्या देते हैं जो ग्रामीण गरीब किसान अपने घर का अनाज खाता है। मैं जानता हूँ कि गरीबों के नाम पर चनले वाली सभी योजनाओं में कितना भ्रष्टाचार व्याप्त हैं।

आप, मैं, मुक्तानन्द जी तथा अन्य सब साथियों से जानता चाहता हूँ कि आप आर्थिक समस्याओं का प्रशासनिक समाधान क्यों खोज रहे है? क्या आर्थिक समस्याओं का आर्थिक समाधान नहीं है? मेरे विचार में है। सभी प्रकार के टैक्स और सभी प्रकार की सब्सीड़ी खत्म कर दीजिये ।प्रत्येक परिवार या अमीर की सम्पूर्ण चल अचल सम्पत्ति पर समान दर से कर लगाकर जितना धन प्राप्त हो वह भारत के प्रत्येक व्यक्ति में समान रूप से बांट दीजिये। आर्थिक असमानता भी कम होगी और भ्रष्टाचार भी कम हो जायगा। सरकारी खर्च के लिये आवश्यक राशि डीजल, पेट्रोल, बिजली पर मूल्यवृद्धि करके पूरी कर लीजिये। इस मूल्य वृद्धि का भी आर्थिक असमानता कम करने पर सीधा और प्रत्यक्ष पड़ेगा। जो काम इतना आसान है उसके लिये प्रशासनिक समाधान का खतरा उठाना कदापि उचित नहीं है।

(4) श्री अनिल पाठक, व्यवस्था परिवर्तन अभियान कार्यालय दिल्ली।

जनसत्ता पंद्रह जून में छपे, विद्वान लेखक गुरूस्वामी के लेख में कई आर्थिक मुद्दों पर विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की गई है। उन्होने पूरे लेख का निष्कर्ष निकाला है कि गरीबी रेखा की वर्तमान कसौटी को और उपर उठाया जाय। आपका इस संबंध में क्या मत है?

उत्तरः— विद्वान लेखक का पूरा लेख मैने पढ़ा। उसमें कुछ महत्वपूर्ण जानकारियॉ दी गई हैं—

(1) ग्रामीण क्षेत्रों मे प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति चौबीस सौ कैलोरी और शहरी क्षेत्रों मे इक्कीस सौ कैलोरी की आवश्यकता है जिसे वर्तमान मूल्य में परिवर्तित करें तो साढ़े छः सौ ग्राम अनाज के समतुल्य ''शहरी क्षेत्र में पांच सौ उनसठ रूपये मासिक अर्थात् करीब अठारह रूपये प्रतिदिन और ग्रामीण क्षेत्र में तीन सौ अरसठ रूपये अर्थात् बारह रूपये प्रतिदिन है।

(2) उन्नीस सौ तिहत्तर में गरीबी रेखा के नीचे वालों की संख्या बत्तीस करोड़ दस लाख थी जो उस समय की आबादी का पचपन प्रतिशत था। आज तेंतीस वर्ष बाद यह संख्या घटकर करीब पचीस करोंड है जो आबादी का करीब साढ़े तेईस प्रतिशत है।

(3) गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन करने वालों की गणना कैलोरी मात्र से की गई है। उसमें वस्त्र, शिक्षा, आवास आदि को गणना का आधार नहीं बनाया गया। यदि बनाया जाता तो यह संख्या बहुत अधिक होती।

(4) गरीबी रेखा की पुर्नपरिभाषा हेतु गठित समिति सेन्टर फार पालिसी आल्टरनेटिक्स के ताजा अध्ययन के अनुसार भारत में प्रत्येक नागरिक को आठ सौ चालीस रूपये प्रतिव्यक्ति प्रति माह से नीचे होने पर उसे गरीबी रेखा के नीचे मान लेना उचित होगा। इसमें भोजन के लिये पांच सौ तिहत्तर रूपये, स्वास्थ्य के लिये तीस रूपये, वस्त्र के लिये सत्रह रूपये, बिजली के लिये पचपन रूपयें, बर्तन आदि खुदरा सामान के लिये एक सौ चौंसठ रूपया अनुमानित है। इसके अतिरिक्त भी प्रत्येक व्यक्ति को कुछ और भी सुविधाएँ आवश्यक हैं।
(5) नई परिभाषा के अनुसार भारत की अड़सठ प्रतिशत आबादी गरीबी रखा से नीचे है तेइस नहीं जैसा सरकार कहती है।
(6) केन्द्रीय कृषि मंत्री शरद पवार द्वारा कराये गये राष्ट्रव्यापी सर्वेक्षण के अनुसार गरीबी रेखा के नीचे वालों के लिये दिये गये राशन और मिट्टी तेल का दो तिहाई ही उन तक पहुँच पाता है। बाकी सब भ्रष्टाचार में चला जाता है।

लेखक के अंत में निष्कर्ष निकाला है कि गरीबी रेखा की नई परिभाषा बनाकर उसमें और गरीबीं को शामिल करना उचित प्रतीत होता है।

मैं मोहन गुरूस्वामी जी के आंकड़ो से तो सहमत हूँ किन्तु निष्कर्षो से सहमत नहीं। समाज में दो वर्ग बन गये हैं (1) स्वजीवी, (2) परजीवी। इन दोनो का गुण, कर्म पहचान बिल्कुल भिन्न–भिन्न होती है। स्वजीवी वर्ग अधिकांश गावों में रहता है,श्रम प्रधान रोजगार करता है, सीधा सादा जीवन जीता है, पत्यक्ष में परिवार की और अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्र या समाज की चिन्ता करता है। उसके सम्पूर्ण जीवन में राष्ट्र और समाज की चिन्ता उतनी भी नहीं दिखती जितनी वह करता है। दूसरा परजीवी वर्ग है जो बुद्धिजीवी है, शहरों में रहता है, सामान्य से अच्छा जीवन जीता हैं और प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्र और समाज की तथा अप्रत्यक्ष रूप से परिवार की चिन्ता करता है। परजीवी बहुत तिकड़म करने में माहिर होता है। दूसरों के धन से दूसरों की चिन्ता करके उसमें से परिवार का खर्च, सामाजिक सम्मान और अपनी उन्नति की कला उसे खूब आती है। मैं समाज में स्पष्ट अनुभव करता ह् कि दूसरे प्रकार के लोग पहले प्रकार के लोगों की गरीबी रखा, आर्थिक असमानता आदि की बहुत चिन्ता करते हैं। उनमें कितनों की चिन्ता वास्तविक है और कितनों की तिकड़मी इस बात का पता लगाकर सबसे पहले स्वजीवियों को परजीवी चिन्ताकों से मुक्त दिलाना उचित प्रतीत हाता है।

अब मैं प्रस्तुत लेख की समीक्षा करूँ। ग्रामीण आबादी की चौबीस सौ कैलोरी के छः सौ पचास ग्राम अनाज का मूल्य बारह रूपये और शहरी क्षेत्र में इक्कीस सौ कैलोरी के पांच सौ पच्चीस ग्राम का मूल्य अठारह रूपये निर्धारित है। यह बारह और अठारह का अंतर क्यों? क्या शहरों में अनाज, इतना महंगा है? और यदि है तो शहरों से बड़ी मात्रा में ग्रामीण क्षेत्रों में अनाज सहित अनेक वस्तुएँ जाती क्यों है? आप पता करें तो मालूम होगा कि शहरां से बड़ी मात्रा में आटा, दाल, शक्कर आदि उपभोक्ता वस्तुएँ बाहर जाती हैं। सरकारी राशन में भी रेट का फर्क नहीं। फिर शहर के व्यक्ति को तो शिक्षा स्वास्थ्य आदि की भी अनेक सुविधाएँ विशेष रूप से प्राप्त हैं। ऐसी हालत में गांव के श्रम जीवी को बारह रूपये से उपर अमीर मानलेना और शहर वाले को बारह से अठारह तक को भी अमीर न मानना पूरी तरह गलत निष्कर्ष है। या तो दोनो को बराबर करें या ग्रामीण की अपेक्षा शहर वाले की कम करना न्याय संगत होता।

एक कहावत है कि एक सौ लोगों में से भूखे लोगों को बांटने के लिये दस किलो मात्र अनाज था। भूखे लोगों की सूची बनने लगी तो सत्तावन लोग ऐसे निकले जो या तो बिल्कुल भूखे थे या आंशिक भूखे थ। सत्तावन लोगों में बराबर–बराबर अनाज बांटा गया जिससे कुछ आंशिक भूखे तो पेट भरने से सूची से बाहर हा गये, कुछ आंशिक भूखे में शामिल रहे और कुछ आंशिक भूख ही मिटा सके। कई बार के प्रयत्न के बाद भी तेइस लोग ऐसे रह गये जिनकी भूख अभी अधूरी ही है तब तक एक कमेटी ने यह जॉच शुरू कर दी कि जो सतहत्तर लोग भूखों की श्रेणी से बाहर है इसमें संतोष जनक भरे पेट तो बहुत कम हैं। शेष तो बेचारे सत्तू या मोटे अनाज की रोटी बिना दाल सब्जी की खाकर बाहर हा गये है। सबकों भूखों में शामिल करना न्यायोचित है। मोहन जी सरीखे विद्वान भी उनका समर्थन करने लगे। ये बेचारे तेइस लोग जो किसी तरह अपना क्रम आने की प्रतीक्षा में थें उन्होंने अपना सिर पकड़ लिया क्योंकि दस किलों अनाज पहलें तेइस भूखों में बराबर बंटता अब अड़सठ में बराबर बंटेगा क्योंकि सेन्टर फार पालिसो आल्टरनेटिव्स के निष्कर्षो के आधार पर नई गरीबी रेखा के मापदण्ड की सिफारिश है। क्या तेइस भूखों के साथ यह न्याय है? क्या हम नतीजा निकाल लें कि परजीवी लोग अपनी भूख का इलाज करने के लिये गरीबी रेखा की पुनगणना कर रहे हैं? यदि नहीं तों वर्तमान परिभाषा के अन्तर्गत सूची समाप्त हुए बिना नई गणना क्यों और किसकें लियें? यह पुर्नगणना गंभीर प्रश्न खड़े करती है।

पहली भूल तों सन तिहत्तर में हुई कि चौबीस सौ कैलोरी को आधार बनाया गया। यदि अठारह सौ कैलोरी आधार बनती तों अधिक न्याय संगत होती। बीस वर्षों में सबको रेखा से बाहर करके हम अठारह सौ को तेइस सौ कर सकते थे। यदि वैसा करते तो आज हम उस सीमा रेखा को आगे बढ़ा सकते थे। दूसरी भूल यह हुई कि शहरी गरीबी रेखा और ग्रामीण गरीबी रखा बनानें में ग्रामीण की जगह शहरी को अधिक महत्व दिया गया। तीसरो भूल यह हुई कि गरीबी रेखा से नोचे जीवन यापन करने का आकलन तो पैसे पर हुआ किन्तु सहायता नगद न देकर वस्तुओं रूप में दी गई। परिणाम स्वरूप वस्तुएँ ग्रामीणों तक पहुँच ही नहीं सकीं और उसका अधिकाधिक लाभ परजीवियों ने उठा लिया। ये तीन कारण तो पहले से मौजूद हैं जो वास्तविक जरूरत मंदो को लाभ से दूर कर रहें है। अब परजीवियों ने नई योजना प्रस्तुत करनी शुरू कर दी है जिसमें गरीबी रखा के मापदण्डों को इस तरह बदला जा रहा है कि गरीबी रेखा के नीचे वालों की संख्या में भारी विस्तार हो जावे। यदि यें लोग वास्तव में गरीबों के हमदर्द हैं तो शासन से मांग करें कि गरीबी रेखा के नीचे जीवन जीने वालों को दी जा रही सारी सुविधाएँ बन्द करके उन्हें प्रति व्यक्ति की दर से उतना पूरा कर दें जितना उनके पास चार सो रूपये प्रतिमाह से कम पड़ता हो। सम्पूर्ण गरीबी रेखा एक ही दिन में अनावश्यक हो जायगी। पच्चीस करोड़ लोगों को कुछ मिलाकर एक वर्ष में पांच खरब रूपया में काम चल जायगा जिससे अधिक तो अभी उनकी विभिन्न सब्सीडी और सुविधाओं पर खर्च हो जाता है। इससे एक लाभ और होगा कि बहुत से परजीवी जो गरीबी के नाम पर ही दुकानदारी चलाते हैं, वे भी बेरोजगार हो जायेंगे। अंत में मेरा यही मत है कि मैं गरीबी रेखा में किसी भी प्रकार के संशोधन के विरूद्ध हूँ तथा मांग करता हूँ कि ऐसे किसी प्रस्ताव का खुलकर विरोध किया जावे।

(5) श्री हुकुमपाल सिंह विकल, भोपाल, मध्यप्रदेश।

एक कविता भेज रहा हूँ।

काम वतन के आने वाला, प्रज्ञा पुरूष कहाने वाले,
चिन्तन धार बहाने वाले, नई क्रान्ति फिर लाने वाले,
होते हैं हर काल,
इसीलिए तो आप आ गयें, कर में लिए मसाल,
नई व्यवस्था की राहों में, नव परिर्वतन की चाहों में,
एक नया अभियान उठाकर, अपनी इन कोमल बाहों में
ले रक्षा की ढाल,

(6) श्री सुनील एक्का, दिल्ली

अमर उजाला ग्यारह जून कें अंक में आचार्य राममूर्ति जी के विचार छपे है। वह लेख इस तरह है।

जब अंग्रेजी राज्य समाप्त हुआ, तो केवल अंग्रेजी का राज ही नहीं खत्म हुआ, बल्कि कुछ ही दिनों में छह सौ से अधिक राजे–रजवाड़ो की सत्ता भी समाप्त हो गई। 26 जनवरी 1950 को नया संविधान लागू हो गया। इसके साथ ही हर नागरिक लोकतंत्र में मतदाता हो गया। अपना

प्रतिनिधि चुनने की बात तो उनकी समझ में मतदाता हो गया। अपना प्रतिनिधि चुनने की बात तो उनकी समझ में आती थी, लेकिन जब उनसे यह कहा जाए कि उन्हे नागरिक होने के नाते कुछ जिम्मेदारी भी उठानी चाहिए, तो लोगों को यह बात अट्पटी सी लगती है। कई लोग तो यह भी कह डालते हैं कि सरकार किस लिए है ?

पंचायती राज के शुरू हो जाने से कितना बड़ा परिवर्तन हुआ है, यह बात अभी तक हम पूरे तौर पर समझ नहीं पा रहे हैं। दिल्ली और पटना में शासन प्रतिनिधियों द्वारा चलता है, पंचायती राज में कल्पना यह है कि पंचायत की पूरा व्यवस्था उसके अंतर्गत रहने वाले नागरिकों द्वारा चले या चलाई जाय। प्रधान या मुखिया मुख्य व्यक्ति है, प्रशासन नहीं। लेकिन जनता ने भी उसे प्रशासक मान लिया है और सरकार ने भी। कठिनाई इसी जगह पैदा होती है। संविधान के तहत यह बात कही गई है कि पंचायती राज का काम इस तरह चलाया जाए कि वह स्वशासन की इकाई बन जाए। लेकिन देखने में यह आता है कि स्वशासन की बात का महत्व न तो सरकार समझती है और न ही प्रतिनिधी। इसलिए पंचायत के चुनाव में इसी तरह लड़ाई होती है, जिस तरह दिल्ली और पटना की विधान सभाओं के लिए।

हमरा संविधान सभाओं का संविधान है। ग्रामसभा, विधानसभा, लोकसभा, ये तीन सभाएं बराबर हैसियत की हों। कोई कारण नहीं है कि एक की हैसियत दूसरे से कम हो। इस संदर्भ में सभाओं का सीधा अर्थ यह है कि अधिक से अधिक काम, जिनका संबंध नागरिक के दैनंदित जीवन से है, उनकी जिम्मेदारी ग्रामसभा पर होगी तथा लोकसभा के जिम्मे कम से कम रहेगा, क्योंकि उसे पूरे देश की चिंता करनी है। इससे एक दूसरी बात यह प्रकट होती है कि ग्रामसभा का काम व्यवस्था चलाने का है, हुकुमत करने का नहीं। व्यवस्था के लिए शक्ति नागरिकों के सहकार से पैदा होती है, सरकार के हुक्म से नहीं। पर हम देख रहें हैं कि पंचायत को प्रशासन की इकाई मान लिया गया हैं, जो वह नहीं है।

एक दूसरी कठिनाई भी है, जो हमारे समाज के कारण पैदा हुई है। हमारा समाज इस तरह बना हुआ है कि जहां गांव के मजदूरों का काम मालिकों के खेत जोतना है, वहीं दस्तकार या कारीगर की जिम्मेदारी गांव के लोंगो की सेवा करना है। कुछ भी हो, प्रधानता मालिकों की है, जबकि संविधान की मंशा यह है कि गांव में जितने लोग बसते हों, चाहे वे किसी जाति के हों, चाहे उनके पास जो हुनर हा, वे पुरूष हों या महिला, सबको मिलकर ऐसी व्यवस्था चलानी ह कि पंचायत एक सहकारी स्वशासन की इकाई बन जाए।

विकास के लिए सरकार जो रीति–नीति चला रही है, उस नीति में ज्यादा महत्व सरकार के निर्णय का है। उसमें पंचायत के सुख या सुविधा का ध्यान कम रखा जा रहा है। जनता के वित्त और चरित्र को शासन से हटाकर व्यवस्था की ओर ले जाया जाए, इस तरह की कोशिश होती दिखाई हो नहों देती। लोंगों का चित्त बदलने, चरित्र बदलें, काम करने के ढंग बदलें, इसके लिए सुव्यवस्थित कोशिश करनी पड़ेगी, ये काम अपने आप नहीं होते। सहकार केवल एक नारा नहीं है, बल्कि जीवन का अभ्यास है, जिसे प्राप्त करन में समय लगता है। वह समय आज कहां, कौन लगा रहा है? अर्थनीति में प्रसिद्वंद्विता, राजनीति में प्रतिद्वंद्विता, जब सब जगह प्रतिद्वंद्विता ही प्रतद्वंद्विता है, तो सरकार के लिए जगह कहां बचती है ?

भगवान बुद्ध ने लोकतंत्र का एक सूत्र दिया, मिलो, संवाद करो और उस समय तक संवाद करते रहो, जब तक सब मिलकर एक राय पर न पहुँच जाएं। महात्मा गांधी का सूत्र था कि लोकतंत्र में जनमत का इस्तेमाल जरूरत पड़ने पर अस्त्र के रूप में किया जाना चाहिए। हमने पंचायती राज तो बनाया, लेकिन हमने इन दोनो सूत्रों को अलग छोड़ दिया। यह ठीक है कि जिन प्रतिनिधियो ने पंचायती राज का कानून पारित किया, वे जिम्मेदारी से बरी नहीं हो सकते। जरूरत इस बात की है कि सुधार के कदम उठाने में देर न की जाए। ग्रामसभा यह निर्णय कर सकती है कि उसके सारे फैसले एक राय से हों व उसकी बैठक हो सकती है, जिसमें सब लोंगों को यह बात बताइ जाए कि गांव के विकास की क्या योजना है व उसके लिए कितना धन सरकार से आया है। किसी का मनमानापन ढोने की जिम्मेदारी पंचायत पर नहीं है।

पंचायती राज व्यवस्था के तहत अनेक ऐसे काम हैं, जो श्रमदान से हो सकते हैं, जिनके लिए ज्यादा पैसे की जरूरत नहीं है। श्रमदान सहकार की भावना बनाता व उसका अभ्यास कराता है। सही काम करने से हमें कोई कानून विवश नहीं कर सकता। समय आ गया है कि हम अपना चित्त और चरित्र बदलें। अगर इन दो बातों में बदलाव आता है, तो बड़े परिवर्तनों के लिए रास्ता साफ हो जाता है। अब नागरिक को ही बड़े पवित्तन के लिए आगे बड़ना पड़ेगा।

मुझे लगता है कि हम सबके व्यवस्था परिवर्तन अभियान से इनके विचार बिल्कुल समान हैं। हम क्यों नहीं मिलकर कोई योजना बनाते हैं ?

उत्तर :– मैं आचार्य राममूर्ति जी से निकट परिचित हूँ। बहुत ही अच्छे आदमी हैं।

मुझे बचपन की एक घटना याद है कि मेरे शिक्षक ने हम सब बच्चों को कहा कि जो बालक बिना गलती किये सौ कदम इस तरह चलेगा कि उसके बायें पैर के साथ दायाँ हाथ और दायें पैर के साथ बाँया हाथ आगे पीछे चले तो उस बच्चे को इनाम मिलेगा। सब बच्चों ने बहुत प्रयत्न किया परन्तु इनाम नहीं ले सके। कुछ देर बार गुरूजी ने बताया कि बच्चे अपनी सवभाविक चाल से चलकर बतावें कि उनके किस पैर के साथ कौन सा हाथ चलता है तो हम सब यह देखकर चकित हो गये कि हमारी स्वभाविक चाल ठीक वैसी ही थी जैसे गुरूजी कह रहे थे। मेरे विचार में समाज के समक्ष भी वही समस्या है कि अनेक लोग, कछ शासक बनकर अरौर कुछ समाज सुधारक बनकर समाज स्वाभाविक गति को अवरूद्ध कर दे रहे हैं और दोष चलने वाले का बता देते हैं। आचार्य राममूर्ति जी भी उनमें से ही एक समाज सुधारक हैं जो दिन रात समाज को दिशा देने में ही व्यस्त हैं। ऐसे लोग समाज के लिए समाधन न होकर समस्या रूप होते हैं।

प्रस्तुत लेख में उन्होंने लिखा कि " संविधान के तहत यह बात कही गई है कि पंचायती राज का काम इस तरह चलाया जाय कि वह स्वशासन का इकाई बन सके "। मेरे विचार में यदि संविधान की मंशा पंचायत राज का काम इस तरह चलाने की है तो या तो मंशा समझने में भूल हुई या संविधान गलत है। पंचायत राज का काम इस तरह चलाने की जरूरत ही नहीं है। उसका काम तो चलने देने की जरूरत है। सीख पंचायती राज को न देकर शासन को देने की जरूरत है कि वह पंचायतों को स्वतंत्र निर्णय करने दे। जब आचार्य जी की नजर में ग्रामसभा की हैसियत लोक सभा के समकक्ष है तो लोकसभा के विषय में क्यों कानून बनाने का अधिकार रखती है। आचार्य जी ने दूसरे स्थान पर फिर कहा कि " लागों का चिंता बदले, चरित्र बदले, काम करने के ढंग बदलें, इसके लिए सुव्यवस्थित कोशिश करनी पड़ेगी "। फिर वही गुलाम मानसिकता प्रकट कर रहें हैं आचार्य जी। पहले यह तय करिये कि बदलना सत्ता को है या समाज को ? सत्ता को दोषी घोषित न करके घुमा फिराकर समाज पर दोष थोप देना और उसे दस तरह की सीख देने वाले तो समाज में गली गली मिल जायेंग। आप कदि वास्तव में समाज का भला चाहते हैं तो चित्त, चरित्र काम करने का ढंग बदलने की सीख समाज के स्थान पर शासन को दीजिये और यदि वह न बदले तो गांधी के समान " राजनेताओं सत्ता छोड़ो " का नारा देकर कुछ समाज के लिए कर जाइये और यदि नहीं कर सकते ता बेमतलब की आदर्शवादी सलाह की अभी आवश्यकता नहीं है। इस समय समाज को संघर्ष की आवश्यकता है निर्माण की नहीं। हम पीसें और कुत्ता खाय और आप कुत्ते को भगाने के स्थान पर और अच्छी तरह आटा पीसने के गुण बतावें ऐसी सीख को हम समयानुकूल नहीं मानते। मुझे आपकी नीयत पर कभी शक नहीं रहा किन्तु आप लोग स्वयं को इतना अधिक ज्ञानी और चरित्रवान मानते हैं कि आप लोग सम्पूर्ण समाज को अपने समक्ष बौना मानने लग जाते हैं। आपने बुद्ध की कथा कहकर सर्वसम्मति की बात कही है। हम लोगों ने बैठकर सर्व सम्मति बना ली है कि यदि शासन ग्राम सभाओं को विधायी अधिकार प्रदान करने का संविधान संशोधन नहीं पारित करता है तो हम सब मिलकर भारत के राजनेताओ को इसके लिये अहिंसक और संवैधानिक तरीके से मजबूर कर देंगे। अब आप बताइए कि आप इस सर्व सम्मति में कितना शामिल हैं। सर्व सम्मति बने यह बात कहने वालों को स्वयं भी सर्वसम्मति बनाने की दिशा में चलकर दिखाना चाहिये। आपने लिखा है कि लोकतंत्र में जनमत का इस्तेमाल अस्त्र में होना चाहिये । हम सबने लोकतंत्र की " लोक नियुक्त तंत्र " वाली शोषण युक्त परिभाषा को बदलकर लोक नियंत्रित तंत्र कर दिया है। हम जनमत को अस्त्र के रूप में प्रयोग करना चाहते हैं। आपमें कुशल

नेतृत्व की क्षमता है। हमारे पास कुशल नेतृत्व का अभाव है। हम तो चाहेंगे कि लोकतंत्र की वर्तमान परिभाषा से मुक्ति में हमे आपका नेतृत्व मिले। आशा है कि आपका सकारात्मक उत्तर मिलेगा।

श्री जी.पी. गुप्ता, नजरबाग, छतरपुर, मध्यप्रदेश

बनारस बैठक को तीन माह हो गये किन्तु ज्ञान तत्व में उसकी कोई रिपोर्ट नहीं छपी। मैं निरंतर सक्रिय हूँ ।

मैं यह बात अच्छी तरह समझ गया हूँ कि ज्ञान तत्व का जितना ही अधिक विस्तार होगा उतना ही अधिक से समाज में विचार बढ़ेगा और उतनी ही तीव्र गति से हम लक्ष्य प्राप्त करने की दिशा में भी बढ़ेंगे। ज्ञान तत्व का तीव्र विस्तार हमारे सम्पूर्ण कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण अंग है किन्तु हमारा केन्द्रीय कार्यालय इस मामले मं लापरवाह दिखता है। मैंने वाराणसी में ज्ञान तत्व के नौ नाम देकर उनका शुल्क चार सो पचास रूपये आपको दिये थे। उनमें से सिर्फ तीन को एक ज्ञान तत्व प्राप्त हुआ। बाकी को नहीं। इससे कार्य की उपयोगिता तो प्राभावित होती ही है, हमारी विश्वसनीयता और परिणाम स्वरूप उत्साह पर भी ठंडा पानी पड़ जाता है योग्यता के मामले में ज्ञान तत्व एक परिपूर्ण विचार है तो व्यवस्था के अभाव में उसे क्षति हो सकती है।

उत्तरः—यह बात सही है कि ज्ञान तत्व में वाराणसी की रिपोर्ट नहीं छपी। ज्ञान तत्व का पूर्वार्ध भाग ज्ञान यज्ञ मण्डल के वैचारिक पक्ष में निमित रहता है और उत्तरार्ध व्यवस्थ परिवर्तन के संगठन पक्ष का। पर्वार्ध मैं तैयार करता हूँ और उत्तरार्ध कार्यालय । अभी कार्यालय की लिखने की आदत नहीं बनी है। ऐसे ही पत्र आते रहेंगे तो सक्रियता स्वाभाविक है।

भारत में चिट्ठियों की डिलीवरी करीब पचहत्तर प्रतिशत हैं। इसीलिये कुरियर व्यवस्था का विस्तार हो रहा हैं। पत्र पत्रिकाओं की डिलीवरी साठ प्रतिशत है। यदि ये भी कम है तो यह माना जाता है कि आपकी पत्रिका सामान्य से व्यक्ति के लिये भी पठनीय है जो बिना पचास रूपया दिये भी पढ़ना चाहता है और पढ़े बिना उसे संतोष नहीं हैं

आपने जो नाम दिये उनमें से जिनको पत्रिका प्रारंभ है उन सबके नाम पते आपको छतरपुर भेज रहे हैं। आप चेक कर लें। यदि नाम पते ठीक करना हो या छूट गया हो तो आप हमें सूचित कर दें। नाम होने के बाद भी यदि न मिले तो मान लें कि उसका कहीं और सदुपयोग हो रहा है।

पूरे देशभर में यदि कहीं भी हमारे पाठकों को चाहे वे सशुलक हा या निःशुल्क, कोई अंक नहीं मिलता है तो आप हमें सूचित करें। वह अंक दिल्ली कार्यालय से चला जायगा। यदि किसी पाठक को मिलता ही नहीं है तो वे हमें एक दूसरा पता और भेज दें। हम उन्हें एक दूसरी भी कठिनाई न हो। या यदि कोई देखते हुए हम हर तरह का प्रयत्न करने में आपके साथ हैं। आप ने कुछ नाम भेज वे चढ़ गये।

वक्ता की जरूरत है

महेश भाई, बिजयीपुर, गोपालगंज, बिहार

वक्त की जरूरत है, तैया हो जाओ
मुक्ति अभी नहीं, तो कभी नहीं, तुम
समझदार हो जाओ।, हाहाकार की बयार
है जो यह बह रही, व्यवस्था ही जहाँ
ह आतंक का पर्याय बन रही, अतः वक्त की जरूरत की
पहचान तो जगाओ, तैयार हो जाओ, तैयार हो जाओ।
व्यवस्था जलील करती है, इसकी समझ बढ़ाओ
जलालत से लड़ने का, अभियान बन जाओ
वक्त की जरूरत है, जलाजला बनकर
तुम तुफान तो बरपाओं, जीवन कला हो विकसित
नई राहें तुम बनाओं, वक्त की जरूरत है।
तुम तैयार तो हो जाओ, लोक भाषा लोकनीति
लोक स्वराजय का स्वनिर्णय, नई रचना को
नया अभियान चलाओ, लोक स्वराज्य और
लोक नीति की गरिमा जिसमें, ऐसा संविधान बनाओ
अभी नही तो कभी नहीं को, जन जन पहुँचाओ
वक्त की जरूरत पर, तुम तैयार तो हो जाओ।

उत्तरार्ध

दो माह की यात्रा का अनुमानित कार्यक्रम बन चुका है। बहुत आवश्यक होने पर कुछ फेर बदल संभव है। अंतिम कार्यक्रम आगे जायगा। कार्यक्रम में आयोजकों से निवेदन है कि वे यात्रा व्यय के रूप में पांच सौ रूपये दान देने की तैयारी करें। यात्रा के पूर्व पड़ाव पर आपका काई कार्यकर्ता आ जावे तो आगे स्थल तक पहुँचने में सुविधा होगी। कार्यक्रम में एक सवा घंटे का हमारा भाषण, पौन घंटे करीब का प्रश्नोत्तर, पौन घंटे करीब की कार्यकर्ता बैठक तथा पत्रकार वार्ता रख सकते हैं। मीटिंग का या तो अध्यक्ष न रखें या अध्यक्ष पूर्व में बोल लें तो और अच्छा रहेगा। भोजन और नास्ते में तली हुई वस्तुएँ कम से कम रहें। रात नौ बजे तक सो जाना अच्छा होगा।

ज्ञान तत्व के अधिक से अधिक ग्राहक बनाने हैं। साहित्य भी काफी मात्रा में बिकना चाहिये । यात्रा के संबंध में अपना सुझाव शीघ्र भेजने की कृपा करें।